सृष्टि के प्रकाश पुंज : अंधेरे के आलोक पुत्र

गौरव गौतम*

सारांश :-

किसी परिवार की उन्नति उसकी संतति पर निर्भर करती है। इसी तरह कोई समाज, कोई देश कितनी प्रगति करेगा यह उस समाज के व्यक्ति और देश के नागरिकों पर निर्भर करता है कि वह प्राप्त परम्परा का वरण कर उसे परिष्कृत करते हुए परिवर्धित करते है या प्राप्त हुई सम्पति को क्षरित होने देते है। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने अपने ललित निबंधों के संग्रह 'अंधेरे के आलोक पुत्र' में ऐसे व्यक्तियों का वर्णन किया है जो अपने परिश्रम, तप और पुरुषार्थ से व्यक्तित्व बन गए। जिन्होंने जीते जी तो समाज की कुरीतियों, जड़ता और मूढ़ता से अलग कर बहुजन को न केवल बाहरी बल्कि भीतरी तौर पर इतना सशक्त बनाया कि कोई भी लालच, भय और प्रलोभन उन्हें सन्मार्ग के मार्ग से डिगा नहीं सकता। उनके भू लोक से जाने के बाद भी लोग उनसे प्रेरणा लेकर अपने पथ को प्रशस्त कर रहे है।

कुंजी शब्द :-

कुरीतियों, पुरुषार्थ, अंधेरे, प्रकाश, प्रभोलन, संस्कारवान, भेदभावरहित।

इस कृति में उपाध्याय जी ने 'रोम रोम में बसने वाले राम, भावपुरुष श्रीकृष्ण, वैदिक आडंबर से मुक्ति हेतु उपनिषद् से प्रेरणा लेकर समाज के चित्त को माजने वाले बुद्ध और महावीर, मध्यकाल की क्रूरता और गतिहीनता वाले समाज में लोगों को निडर बनाकर स्पंदित करने वाले कबीर और नानक जैसे भारतीय विभूति के साथ-साथ विश्व को करुणा का पाठ पढ़ाने वाले ईसा और बंधुत्व के भाव से सामाजिक विषमता मिटाने वाले पैगंबर हज़रत मोहम्मद के कर्मपथ को लालित्य के साथ शब्दबध्य करने का कार्य इस कृति में किया है। इन सभी महामानवों ने अपने देशकाल, वातावरण और परिस्थितियों का ध्यान रख अपने कर्म के लिए अलग राह चुनी लेकिन सब का उद्देश्य अपने परिवेश को शांतिपूर्ण भेदभावरहित और संस्कारवान बनाना था जिसमें कर्म और वाणी का द्वैत नहीं रहता बल्कि उनमें एकतानता होती है।

उपाध्याय जी ने कृति में वर्णित नायकों के साम्य और वैषम्य के संदर्भ में कहा है कि 'इन निबंधों के नायकों के स्वर एक से हैं, भले स्वरूप भिन्न हो। मृदंग, बांसुरी और वीणा के स्वरूप भिन्न हो सकते हैं लेकिन सा, रे, गा, मा, तो एक जैसे ही निकलेंगे। हमारी मुश्किल यह रही कि हम इन्हें इनके स्वरूप से पहिचानने लगे और इनके स्वरों की ध्वनि, स्वरूपों के यशोगानी शोर में खो गई।[1] महापुरुषों के स्वर 'शोर में खो गए' से लेखक का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति इनकी कही बात, इनके द्वारा सुझाए पथ को स्वार्थ के तराजू में तोलकर ही अपनाता है और समाज की जडवत मनोवृत्ति की श्री में वृद्धि करता है। कुछ लोग इन महापुरुषों को आस्था नहीं विवशता के तौर पर अपनाते है ताकि वह अपने स्वार्थ को साध सके। आस्था में समर्पण का भाव होता है जो इष्ट की बात को मानने, उसके अनुरूप कर्मपथ पथ पर बढ़ने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करता है लेकिन ऐतिहासिक कालक्रम को देखने से यह प्रतीत होता है कि महापुरुषों के अनुयायी ज्यादातर उसी मार्ग को अपनाते है जिसका विरोध महानायकों ने किया। अनुयायी कर्मण्यता की जगह पाखंड और आडंबर का मार्ग अपनाते है इसी कारण जब वह युगपुरुषों की वाणी को लोगों तक ले जाते है तो वह निष्प्राण होती है और लोगों को जोड़ नहीं पाती है जैसे तुलसीदास और उनसे प्रेरणा लेकर महात्मा गांधी ने जिस रामराज्य की अवधारणा दी उसी को जब आज के राजनीतिज्ञ कहते है तो वह सिर्फ झूठा प्रलाप लगता है।

उपाध्याय जी ने निबंधों में महामानवों की "कर्मयात्रा का सहज चित्रण और विश्लेषण" किया है जिससे वर्तमान चिंतन पर पड़ी संकीर्णता की धूल भरी परत को झाड़ सके।" श्रीराम को जगाने के लिए प्रभाती गायी जाती है 'जागिए रघुराज कुंवर' इसी शीर्षक से एक निबंध है जिसमें लेखक का कहना है कि राम का नाम "शक्ति और ऊर्जा का पर्याय बन गया"।[2] हम इसे अपने जीवन में प्रासंगिक बनाकर न केवल जीवन को सफल बल्कि सार्थक बना सकते है। किंतु "राम जैसे युगपुरूषों के साथ यही विडम्बना जुड़ी होती है कि वे अपने जिन कृत्यो के कारण वंदनीय होते हैं, अपने समय में, बाद के समय की अकर्मण्य पीढ़ी उनके कृत्यों को अपने आचरण में न ढाल पाने की वजह से उन्हें पूजने लगती है,उन्हें वह बना देती है जो वे बनना चाहते ही नहीं थे और वे अकर्मण्यता के दबाव में बंटवारे और सांप्रदायिकता के प्रतीक बना दिए जाते हैं"।[3] 'रोम-रोम में राम' निबंध 1992 के राम जन्मभूमि आंदोलन के समय लिखा गया था। उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद रामलला की प्राण प्रतिष्ठा हो चुकी है। अब हर भारतवासी का कर्तव्य है कि वह

[1] नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, 'अंधेरे के आलोक पुत्र', इन निबंधों के बारे में शीर्षक से उद्धरित, श्री बेनी माधव प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 1994।
[2] वहीं - पेज 4,
[3] वहीं - पेज 5,

श्रीराम के दर्शन से अपनी दृष्टि, चरित्र, चित्त और चिंतन को परिमार्जित करे जिससे वोटबैंक वाली धूर्त राजनीति के बहकावे में आकर जनमानस उन्मादित न हो।

इस कृति में श्रीकृष्ण से संबंधित निबंध 'देखी तेरी द्वारिका' में आधुनिक वैज्ञानिक समाज में वरदान के रूप में मिली यांत्रिकीय जीवन की ऊब को व्यक्त किया गया है साथ ही अहमदाबाद से द्वारका तक के यात्रा वृतांत का विवरण लालित्यमय शब्दों में किया गया है जिसमें पाठक भी लेखक का सहयात्री हो जाता है। वहीं 'अंधेरे के आलोक पुत्र' शीर्षक निबंध में कृष्ण के जीवन में आयी चुनौतियों और उनसे उबरने वाले कृष्ण के विराट व्यक्तित्व को व्यक्त किया है। युग का नेतृत्व करने में सक्षम वहीं हो सकता है जिसने जीवन की मुश्किलों से हार न मानी हो। जीवन की बाधाओं का सामना करने वाला ही दूसरों को भी राह बता सकता है। "बिना चुनौतियों को स्वीकारे सिर्फ बांझ ही रहा जा सकता है।" कृष्ण कुरुक्षेत्र में निहत्थे होकर भी इसीलिए डटे रहे क्योंकि उन्होंने जीवन के आरंभ से ही कंस और जरासंध जैसी आततायियों का सामना किया। इसके लिए उन्हें बहुत कुछ त्याग भी करना पड़ा जिसमें उनका वृंदावन भी शामिल था।

कृष्ण ने शांति को स्थापित करने के लिए मथुरा छोड़ा था और द्वारिका बसायी। इसके लिए वे 'रणछोर' कहलाने को भी राजी हुए। काश! स्वार्थीजन जो निजी हित के लिए पूरे समाज और राष्ट्र को युद्ध की अग्नि में झोंक देते है वो कृष्ण से यह सबक ले पाते। लेखक द्वारिका को देख प्रमुदित हो जाता है। द्वारिका के संबंध में जो भी उसने पढ़ा-लिखा और सुना है सब उसकी स्मृति में ऊभर आता है। वह भाव से सने हुए शब्दों में लिखता है कि "द्वारिका' कितने आख्यान हुए तेरे। आंखों में जाने कितने द्वापर घूम जाते हैं। कौन से द्वापर से जोड़ू अपने आपको, पौराणिक आख्यानों में वर्णित द्वापर, आध्यात्मिक विश्लेषणों की धुंध में डूबे द्वापर या भक्तिकालीन आस्था में आकंठ डूबे द्वापर। द्वापर कितने ही हों, भजनों में, भक्ति में, तर्क में या आस्था में लेकिन अडिग सत्य सिर्फ यह है कि "द्वारिका" सिर्फ तेरी है"।[4] कृष्ण की द्वारिका समुद्र किनारे है। सागर की लहरों को सुनकर लेखक को विरोधाभासी अनुभूति होती है। वह लिखते हैं - "थरथराती लहरों से लिपटे तट पर गूंजती जल ध्वनियां, लगता है सितार के सारे तार एक साथ झंकृत हुए हों, एक सांगीतिक अनुभूति, पर दूसरे ही पल लगता है कि सागर का यह हाहाकार अतीत का वर्तमान की देहलीज पर क्रंदन जैसा तो नहीं। यह रेत के कणों का आपस में गले मिलकर वहीं चीखना तो नहीं, जिसकी परिणति सागर की अथाह तरंग ध्वनियों में व्यक्त हुई हों"।[5] कृष्ण के जीवन में भी विरोधाभास व्याप्त है। कहाँ वृंदावन की कुंज गलियां और कहाँ कुरूक्षेत्र में रक्तरंजित भूमि पर रथ हांकने की विवशता। उपाध्याय जी कृष्ण के जीवन को व्यक्त करते हुए अपने समय के मानव की विडंबना को वाणी देकर कृष्ण से कहते है-

[4]वहीं - पेज 17,
[5]वहीं

"तुम वास्तव में गीता के कृष्ण हो, द्वंद्व के साक्षात् स्वरूप और निद्वंद्व के जागते प्रतीक। हारमोनियम पर तुम्हारे जागने और स्नान करने का वर्णन करते हुए छंद गाए जा रहे हैं। पंडितजी पूर्णतः विभोर हो, तुममे निमग्न होते हुए गा रहे हैं। यह अवसर उन्हें रोज़ मिलत्ता है जो मुझे आज सुलभ हुआ। यही है हमारे जीवन का दर्शन। कोई सिर्फ विभोर रहते हुए सारा जीवन काट देते हैं और कोई सारा जीवन इसी में गुजार देते हैं कि कभी विभोर हो सकें"।[6]

द्वारिका के बाद जब लेखक बेट द्वारिका जाता है तो उसे दोनों जगह भिन्न-भिन्न एहसास होता है। दोनों स्थलों के परिवेश की भिन्नता को उपाध्याय जी निम्न शब्दों में व्यक्त करते है -"दो भिन्न रूप एक ही द्वारिका में तुम्हारे देखे। बेट में कितने सहज, नैसर्गिक, स्निग्ध और स्नेहमय परिवेश में विराजे और यहाँ कितने दूर, अवरोधों के बीच और आवरणमय, शिल्प के इस परकोटे में बंदी से"।[7]

जीवन में कृत्रिमता का अनुपात जैसे-जैसे बढ़ता है उसी दर से हम बोझ से लद जाते है जिससे जीवन भारी हो जाता है। इससे उबरने के लिए व्यक्ति भवन से वन की ओर आता है। बुद्ध और महावीर भी जीवन की जड़ता से बचने और अन्य लोगों को भी कर्मकांड के मझधार से बचाने के लिए वन की तरफ आए अपना समस्त राजसी वैभव छोड़कर। "बुद्ध का अवतरण एक ऐसे दृढ संकल्प का अवतरण था, जिसकी मुद्रा तामसी नहीं थी। वह सौम्य, शांत, गंभीर और गरिमामय थी, क्योंकि इस मुद्रा में तात्कालिक सवालों के सीधे और सहज उत्तर निहित थे, न तो कोई विरोध निहित था न प्रतिशोध"।[8] बुद्ध का महत्व जड़बद्ध होकर उन्हें पूजने वाले भी न जान सके और न ही बामियान में उनकी मूर्ति तोड़ने वाले आतंकी। स्वयं का पथ चुनने के लिए प्रेरित करने वाले को क्या कोई तोड़ सकता है? नहीं, "तथागत ऐसे योध्दा थे, जिनसे द्वंद ही स्वयं हार गया"।[9] दुःखी की मुक्ति के लिए अष्टांगिक मार्ग देकर उन्होंने अपनी समकालीन और भावी मनुष्य की दशा सुधार करुणा और कर्म के पथ में आगे बढ़ने की दिशा प्रदान की।

बुद्ध की ही तरह महावीर ने भी केवल उपदेश नहीं दिया बल्कि अपने आचरण से संदेश दिया इसी कारण वह "मानवता के प्राणों की धरोहर" है। उनका महावीर नाम ही यह बताता है कि दूसरे के नहीं वरन् स्वयं अपनी इंद्रियों को जीतकर ही व्यक्ति महावीर होता है। विश्व आज भौतिकता की जिस अंधी सड़क पर उद्देश्यहीन दौड़ रहा है जिसका दुष्परिणाम जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिकी संकट है। इससे बचने का उपाय महावीर द्वारा बताए गए आचरण को जीवन में

[6]वहीं - पेज 18,
[7]वहीं
[8]वहीं - पेज 23,
[9]वहीं

अपनाना है जिसे भूलाकर लोगों ने महावीर को पाषाण रूप में स्मरणीय रखा है। "महाबीर का धर्म ऐसे कर्म का दैवीय स्वरूप है जो त्रिरत्नों से शोभित है। ये तीन रत्न हैं. सम्यक् ज्ञान, सम्यक् वर्णन और सम्यक् चरित्र।" उनके "कर्म का यह दैवीय स्वरूप अहिंसा,सत्य,आस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह में विराजता है"।[10]

उपाध्याय जी की इस कृति से यह स्पष्ट होता है कि मानवीय मूल्य किसी व्यक्ति, देश समाज, संस्था, ग्रंथ के बंधुआ नहीं होते है। यह हर जगह मौजूद होते है किंतु इनका वहन वही कर सकते है जो राग-द्वेष, छल-प्रपंच, लोभ-मोह से मुक्त हो। महावीर की तरह ही ईसा ने भी 'अपरिग्रह' की बात की। 'न्यू टेस्टामेंट' में उन्होंने सरल, बेलाग तरीके से ऐसे मार्ग पर चलने को कहा जिसमें मानवता का भाव मौजूद हो किंतु जैसे सनातन धर्म में कुछ लोगों द्वारा धार्मिक ग्रंथों को कपड़े में लपेट कर उन ग्रंथों में निहित शिक्षा को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जाता बल्कि उनके विपरीत कार्य किए जाते है उसी तरह ईसा के सहज शब्दों की दुरूह व्याख्या की गयी जिससे उनके द्वारा बताए गए करुणा भाव को परिमित किया गया व 'अन्य'(other) की अवहेलना की गयी।

ईसा की तरह ही हज़रत मोहम्मद की शिक्षाओं की भी गलत व्याख्या कर हिंसा और जेहाद को बढ़ावा दिया गया जिसका विकृत रूप आज भी अफगानिस्तान में मौजूद है तालिबान के रूप में। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इनके विचारों की जगह इनके प्रतिबिंब और परछाई को महत्व देने का कार्य इनके विचारों को मानने का दावा करने वालों ने किया जिससे आडम्बर और पाखंड को बढ़ावा मिला और वर्चस्व की भावना प्रबल हुई जिसका वीभत्स रूप 'क्रूसेड' में देखने को मिला और आज भी आतंकी हमले में दृष्टिगत होता है।

मानवीय इतिहास में यह देखा जा सकता है कि समाज को कुपथ के अंधेरे में ढकेलने वालों की संख्या ज्यादा रही है और उजाले पथ के लिए राह प्रशस्त करने वालों की कम। किंतु जैसे प्रकाश की एक किरण तिमिर को मिटा देती है वैसे ही कम समाज में भले ही कुटिल और काईयॉ लोगों की तुलना में ईमान पर चलने वाले दृढ़व्रती कम हो फिर भी अपने कृत्य से समाज का संचालन सन्मार्ग की ओर करने में वो सफल होते है जैसे नानक और कबीर हुए जिन्होंने अंधतिमिरावृत युग में खाने और सोने वाले सुखिया संसार को जागृत, सचेत और सतर्क करने का काम किया।

नानक ने 'संगत' और 'पंगत' के द्वारा भेदभाव को उन्मूलित करने का प्रयास किया। "नानक भारतीय संस्कृति के इतिहास वृक्ष पर बैठी उस कोयल की तरह है जिसके मीठे गुंजन ने वर्ग भेद, वर्ण भेद और तमाम तरह के भेदों को लेकर मच रहे कर्ण कटु शोर को दूर किया"।[11]

[10]वहीं - पेज 45,
[11]वहीं - पेज 72

वहीं कबीर ने भी अपना घर जारकर समाज को आलोकित किया जिससे राम-रहीम की एकता के लिए दिशा मिली। लेकिन इन दोनों को भी अपने कुछ अनुयायियों के कर्म, वचन से दुःख मिला होगा जब यह देखते होंगे कि इन्होंने जिस मूढ़ता का विरोध कर परम्परा से रूढ़ियों को अलग किया इनके अनुयायी उसी में लिप्त है। जिस बहते नीर वाली वाणी में इन्होंने जनमानस को राह दिखाई उसमें अपने व्याख्या की बाधा डाल यह लोगों को कूपमन्डूक बना रहे है।

उपाध्याय जी ने अपनी कृति में युगपुरुषों की कर्मयात्रा को दर्ज कर लोगों को इनका निष्पक्ष आकलन करने के लिए आधार दिया है जिसमें तथ्य की प्रामाणिकता और भावों के प्रवाह का मणिकांचन योग है। इस कृति में यह संभावना है कि जन-गण इन व्यक्तियों के चरित्र को अपने चित्त में धारण कर उसे परिमार्जित कर अपना व समष्टि का जीवन आनंदमय कर सकेंगे।